4

वाचा एवं आज्ञा

(निर्गमन 20)

अगस्त 2001 में अलाबामा के सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश रॉय मूर ने अलाबामा सुप्रीम कोर्ट की बिल्डिंग में गुम्बद वाले भवन में दस आज्ञाओं को दर्शाता पांच हज़ार पाउंड भार का ग्रेनाइट का गुम्बद लगवाकर तूफ़ान खड़ा कर दिया। अपने कामों के बचाव में, न्यायाधीश मूर ने ध्यान दिलाया कि दस आज्ञाएं अमेरिकी कानून और न्यायिक प्रणाली का आधार हैं और कहा कि इसलिए उनके लिए अदालत की इमारत में उन्हें लगाना उपयुक्त है। परन्तु इस तर्क से अमेरिकन सिविल लिबर्टिस यूनियन तथा अन्य संगठन, यह कहते हुए कि दस आज्ञाओं के सार्वजनिक प्रदर्शन से ''कलीसिया और सरकार के अलगाव'' का नियम भंग हुआ है, मुकदमा करने से नहीं रुके। दो साल बाद वह स्मृतिचिह्न वहां से हटा दिया गया और न्यायाधीश मूर को पद से बर्खास्त कर दिया गया क्योंकि उन्होंने इसे हटाने के फैडरल कोर्ट के आदेश का उल्लंघन किया था।

इसमें कानूनी पेच जो भी हों पर इसमें संदेह नहीं है कि न्यायाधीश मूर का यह कहना सही था कि दस आज्ञाएं अमेरिकी न्यायिक और कानून प्रबन्ध का ही नहीं बल्कि नैतिकताओं की अमेरिकी मान्यताओं का भी आधार हैं। इससे भी बढ़कर दस आज्ञाएं पश्चिमी संस्कृति की विचारधारा में पाई जाती हैं।

उदाहरण के लिए, जब हमें यह कहना हो कि कोई बात पक्की और मान्य है, तो हम इसे ''पत्थर पर लकीर'' कहते हैं जो मूल में परमेश्वर द्वारा पत्थर पर लिखी गई आज्ञाओं वाले पत्थर की पट्टियों के हवाले से है। किसी भी निश्चयात्मक सूची को ''दस आज्ञाएं'' का नाम दिया जा सकता है। विषय कुछ भी हो सकता है: लोगों ने ''ई-मेल के लिए दस आज्ञाएं,'' ''बॉल खेलने के लिए दस आज्ञाएं,'' ''तनाव के प्रबन्धन के लिए दस आज्ञाएं,'' ''ऑटो रिपेयर की दस आज्ञाएं''-और इस प्रकार यह सूची बढ़ती है।

दस आज्ञाओं के ज़बर्दस्त प्रभाव के बावजूद बहुत से लोगों को इस्राएली इतिहास में उनके महत्व या आज के धार्मिक जीवन में उनकी भूमिका की सही समझ नहीं है। आइए उन आज्ञाओं को एक बार फिर से देखते हैं और समझने की कोशिश करते हैं कि वे क्या हैं।

दस आज्ञाओं के सामान्य अवलोकन

दस आज्ञाएं परमेश्वर की पवित्रता और अनुग्रह की अभिव्यक्तियां हैं। मिस्र से निकलने के लिए अब्राहम, इसहाक और याकूब के परमेश्वर के बारे में और जानकारी की आवश्यकता थी। वे पूरी तरह से मूर्तिपूजक संस्कृति में चार सौ साल तक दासता में थे। आत्मिक रूप में उनकी अगुआई के लिए उनके पास मन्दिर, याजकाई या पवित्र शास्त्र नहीं था। इसलिए उन्हें मिस्र में से

निकालने के बाद पहला काम उन्हें अपने परमेश्वर से फिर से परिचित कराना था।

उन्हें मिस्र में से लाने के थोड़ी देर बाद परमेश्वर लोगों को अरब प्रायद्वीप में सीने पर्वत के नीचे ले गया। वहां उसने उनका परमेश्वर होने और उनके उसके चुने हुए लोगों के रूप में होने के लिए उनके साथ एक वाचा बांधी। इस्राएल के लिए इस वाचा की शर्त उस व्यवस्था को मानना था, जो मूसा के द्वारा दी गई थी। मूसा परमेश्वर के साथ आमने सामने मुलाकात के लिए पहाड़ पर गया और दस आज्ञाएं लेकर नीचे आया (मूल में, इब्रानी में ''दस वचन'')। इन आज्ञाओं को कई बार ''दशादेश'' भी कहा जाता है।

प्रभु की ओर से ''दस वचन'' उसके दो आवश्यक गुणों को बताते हैं। उनसे उसकी पवित्रता और उसके अनुग्रह दोनों का पता चलता है। निर्गमन 19:10-15 लोगों के परमेश्वर के सामने आने से पहले आवश्यक सावधानीपूर्वक तैयारियों का वर्णन करता है। उन्हें अपने आपको शुद्ध करने का निर्देश दिया गया था और कोई पवित्र पर्वत को छू नहीं सकता था। यदि कोई पशु पहाड़ को छू ले तो उसे पथराव से या तीर से मार दिया जाना आवश्यक था; किसी को भी इतना निकट आने की अनुमति नहीं थी कि वह इसे छू सके। 20 से 22 आयतों में इस पृष्ठभूमि की पवित्रता पर चेतावनी मिलती है कि याजक लोगों के लिए भी जो यहोवा के सामने सेवा करते थे अपने आपको पवित्र करना आवश्यक था ''ताकि ऐसा न हो कि यहोवा उन पर टूट पड़े'' (19:22)। यह सारा दृश्य लोगों को उस भय और महिमा को दिखाने के लिए बनाया गया था जिसका उन्होंने परमेश्वर की उपस्थिति में अनुभव करना था, जो सम्पूर्णतया पवित्र है।

पहली चार आज्ञाएं (20:1-11) परमेश्वर की पवित्रता पर ज़ोर देती हैं। पवित्रता की मूल अवधारणा अलग और विलक्षण होने का गुण हैं। इस्राएल के लिए यह समझना आवश्यक था कि उसका परमेश्वर अन्य कई देवताओं में से ''एक और देवता'' नहीं है। कोई भी शारीरिक स्वरूप उसे सही-सही नहीं दिखा सकता, और न ही किसी कथित ''देवता'' को उसके लोगों की वफ़ादारी के लिए उसके साथ मुकाबला करने की अनुमति हो सकती है। उसका नाम भय के साथ लिया जाना आवश्यक था; और संसार को अस्तित्व में लाने के उसके सृजनात्मक कार्य के अनुकरण में उसके लोगों को ''सब्त के दिन को पवित्र मानने के लिए याद'' रखना आवश्यक है। शेष आज्ञाएं परमेश्वर के चुने हुए लोगों के लिए पवित्रता का मानदण्ड थीं। उसकी पवित्रता के कारण उन के लिए पवित्र होना आवश्यक है। यह आज्ञा बाद में व्यवस्था में भी स्पष्ट बताई गई (लैव्यव्यवस्था 11:44, 45) और प्रेरित पतरस द्वारा नये नियम में दोहराई गई (1 पतरस 1:15, 16)।

परमेश्वर हमें हमेशा अपने अनुग्रह के आधार पर पवित्रता के लिए बुलाता है। दस आज्ञाओं को परमेश्वर द्वारा दिए केवल ''नियमों की सूची'' मानना गम्भीर गलती होगी क्योंकि वह हम से शक्तिशाली है। इसके अलावा बल्कि उसके पूरे अनुग्रहकारी स्वभाव की अभिव्यक्तियां हैं। इस्राएल को उसके लोग होने के लिए केवल उसके अनुग्रह से चुना गया था। यह अनुग्रह ही के द्वारा उसने उन्हें दासत्व से छुड़ाया था (निर्गमन 19:4; 20:2)। उनके साथ वाचा का बांधना, इसकी सब सहायक आशिषों के साथ अनुग्रह का ही एक काम है। इसका अर्थ यह है कि ये आज्ञाएं परमेश्वर के स्वभाव को ही दिखाती हैं। नैतिकता और आचार केवल नियम नहीं हैं बल्कि वे इसका आधार हैं कि परमेश्वर कौन है और वह लोगों से क्या चाहता है कि वे बनें।

आज्ञाएं लम्ब और समतल दोनों ओर हैं। ''लम्ब'' का अर्थ है कि आज्ञाएं परमेश्वर के साथ हमारे सम्बन्ध को चलाती हैं, और ''समतल'' का अर्थ है कि उनमें दूसरे लोगों के साथ हमारे सम्बन्ध भी शामिल हैं। आज्ञाओं को ध्यान से पढ़ने पर पता चलेगा कि पहली चार आज्ञाएं मुख्यतया लम्ब दिशा में हैं (जिन में किसी और ईश्वर, या मूर्ति की आवश्यकता नहीं है, परमेश्वर के नाम का इस्तेमाल सावधानी से करना और सब्त को मानना है)। शेष छह आज्ञाएं समतल दिशा में हैं (माता-पिता का आदर करने, हत्या न करने, व्यभिचार न करने, चोरी न करने, झूठी गवाही न देने और लोभ न करने को कहती हुई)।

इस अवलोकन का क्या महत्व है? पहले तो यह हमें याद दिलाता है कि हम परमेश्वर के साथ सही सम्बन्ध तब तक नहीं रख सकते, जब तक हम दूसरों के साथ दुर्व्यवहार करना नहीं छोड़ते। 1 यूहन्ना 4:20 में यूहन्ना ने स्पष्ट कहा, ''यदि कोई कहे, कि मैं परमेश्वर से प्रेम रखता हूं; और अपने भाई से बैर रखे; तो झूठा है: क्योंकि जो अपने भाई से, जिसे उसने देखा है, प्रेम नहीं रखता, तो वह परमेश्वर से भी जिसे उसने नहीं देखा, प्रेम नहीं रख सकता।'' यीशु ने बताया कि परमेश्वर के लिए प्रेम और अपने पड़ोसी के लिए प्रेम दोनों साथ-साथ चलने आवश्यक हैं (मत्ती 22:35-40)।

दूसरा, दस आज्ञाएं लम्ब/समतल दिशा सिखाती हैं कि अच्छे मानवीय सम्बन्ध परमेश्वर के सम्बन्ध में से निकलते हैं। कितने लोगों का दूसरों के साथ सम्बन्ध बनाने और उसे बनाए न रखने का मुख्य कारण यह है कि उनका परमेश्वर के साथ सम्बन्ध जुड़ा हुआ नहीं है। जब परमेश्वर के साथ हमारा मेल नहीं है तो यह सम्भव नहीं है कि हम दूसरों के साथ मेल करेंगे। इस नियम के एक उदाहरण के लिए। (देखें याकूब 4:1-4.)

ये आज्ञाएं वास्तविक और रक्षात्मक भी हैं। दस में से आठ आज्ञाएं नकारात्मक रूप में यानी ''न करने'' को कहते हुए दी गई हैं। यह इस बात का संकेत नहीं हैं कि परमेश्वर इतना नकारात्मक है कि वह दिखाता है कि मानवीय प्रवृत्ति के साथ है। बिना उचित निषेध हम हत्या, चोरी, झूठ बोलना और दूसरे पाप करेंगे। मानवीय पाप के साथ व्यवहार में गम्भीरता किसी काम नहीं आती सो परमेश्वर ने पाप करने की हमारी प्रवृत्ति पर बहुत ही प्रत्यक्ष और वास्तविक रूप में बात की है।

ये आज्ञाएं, ''रक्षात्मक'' भी हैं कि हमें आत्मविनाश को रोकने के लिए बनाई गई हैं। किसी ने सही ही कहा है, ''आप उतना 'आज्ञाओं को नहीं तोड़ते' जितना आप टूट जाते हैं।'' जब हम परमेश्वर के नियमों की बेपरवाही करते हैं तो वास्तव में हम अपने आपको ही हानि पहुंचा रहे होते हैं। उदाहरण के लिए गुरुत्वाकर्षण का नियम एक सरल सी वास्तविकता है जिसे हम जानते हैं। विज्ञान और अनुभव दोनों से पता चलता है कि ठोस चीज़ें पृथ्वी की ओर ही गिरेंगी, यदि उन्हें गिरने से कोई चीज़ न रोके। लोग इस नियम का इनकार करके इसे अमान्य घोषित कर सकते हैं; यदि कोई ऊंची इमारत से नीचे कदम रखता है तो वह गुरुत्वाकर्षण के नियम ''पर टूट'' जाएगा। नियम बताता है कि ऐसा ही होता है और इसे मान लेना हमें हानि से बचाता है। इसकी बातें न मानना हमारे विनाश का कारण बनेगा। इसलिए परमेश्वर हमें आज्ञाएं देकर अपने आप से बचाने की कोशिश कर रहा था। जो कुछ परमेश्वर ने आज्ञा दी है वह हमारे लिए उसके आदर और अपने स्वयं के बचाव के लिए है।

इस्राएल के मिस्र से बच निकलने के तुरन्त बाद, दस आज्ञाएं लोगों के लिए याद दिलाने के लिए थीं कि वास्तविक स्वतन्त्रता जिन्हें परमेश्वर के सामने झुकने से ही मिलती हैं। असंयमित व्यक्तित्व दासत्व का अपना रूप है और यदि वे परमेश्वर की सुनने से इनकार करते तो उन्होंने फिर से कैदी बन जाना था।

दस आज्ञाओं की व्याख्या

दस आज्ञाएं मुख्यतया अपनी व्याख्या आप करती हैं और उन्हें और विस्तार देने की आवश्यकता नहीं है। उन पर अधिकतर चर्चाएं उनके अर्थ के बजाय उनकी प्रासंगिकता से सम्बन्धित होती हैं। केवल कुछ टिप्पणियां आवश्यक हैं।

पहली आज्ञा, ''तू मुझे छोड़ दूसरों को ईश्वर करके न मानना'' (20:3) का अर्थ यह नहीं है कि जब तक वे यहोवा को प्राथमिकता देते हैं, दूसरे देवताओं की पूजा करने की अनुमति थी। बल्कि उन्हें केवल एक ही परमेश्वर को मानना आवश्यक था (यशायाह 44:6)। एक ईश्वर में विश्वास को ''एक ईश्वरवाद'' कहा जाता है और इस्राएल प्राचीन जगत में एकेश्वरवादी राष्ट्र होने में सबसे अलग था। इस्राएल के आस पास के देशों के बहुत देववाद के कारण वे लगातार अन्य देवताओं को ''जोड़ने'' के प्रलोभन में रहते थे; परन्तु जैसा कि शमूएल और राजाओं की पुस्तकें बड़े विस्तार से बताती हैं कि इस गलती की उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ती थी।

दूसरी आज्ञा (20:4-6) मूर्तियों की पूजा, चाहे वह सच्चे परमेश्वर की आकृतियों की ही क्यों न हों, की मनाही करती है। इसका एक कारण यह है कि आकृतियां अन्त में लोगों के मनों में परमेश्वर की जगह ले लेती हैं, बेशक वे उस आकृति और जिसे वह दर्शाती है उसमें अन्तर का दावा करते हैं। मूर्तियों के विरुद्ध मनाही का एक और कारण यह है कि आकृतियां परमेश्वर को सही ढंग से नहीं दर्शा सकती इस कारण वे उसके वास्तविक स्वभाव से दूर ही हटा सकती हैं। इसके अलावा मूर्तियां यह मानने के विपरीत कि हम उसके स्वरूप में सृजे गए हैं। ''परमेश्वर अपने स्वरूप पर बनाने'' के प्रयास को छोड़ कुछ नहीं है। ''ईश्वर बना लेने'' के बाद लोग स्वयं ही निर्णय लेते हैं कि उस ईश्वर को क्या चाहिए। फिर, वास्तव में वे अपने ही अहम की पूजा कर रहे होते हैं (रोमियों 1:18-23)। परमेश्वर की दूसरी आज्ञा यह स्पष्ट कर देती है कि वह किसी प्रतिद्वंद्वी को स्वीकार नहीं करेगा। वह आवश्यकता से अधिक संवेदनशील होने या मुकाबले के भय के तुच्छ मानवीय बोध के कारण नहीं, बल्कि अपने लोगों की पूर्ण और विशेष रूप में वफ़ादारी की मांग के कारण ''ईर्ष्या'' रखने वाला है। यदि हम ''उसके लोग'' बनना चाहते हैं तो वह हमारा एक, और केवल एक परमेश्वर होना चाहिए।

निर्गमन 20:7 परमेश्वर के नाम को ''व्यर्थ लेने'' से रोकता है। ''व्यर्थ'' शब्द का अर्थ ''खोखला'' या ''अर्थहीन'' है। मूल में विचार यह था कि परमेश्वर का नाम किसी व्यर्थ शपथ या मन्नत को सुरक्षित रखने के लिए इस्तेमाल न किया जाए-उदाहरण के लिए वचन निभाने की किसी मंशा के बिना ''परमेश्वर की'' शपथ खाने के लिए। ''व्यर्थ में'' अभिव्यक्ति परमेश्वर के नाम के किसी भी खोखले या अर्थहीन इस्तेमाल की बात करती है। यह एक आज्ञा है जो आज समाज की ओर से बड़े चौंकाने वाले ढंग से नकारी जाती है!

आयतें 8 से 11 ''सब्त के दिन को पवित्र मानने के लिए इसे याद रखने'' की आज्ञा को ठहराती हैं। इस आज्ञा के बाद इसके महत्व को समझाया गया है। इसे ''तेरे परमेश्वर यहोवा के लिए विश्राम दिन'' कहा गया है। इस दिन को यहोवा को समर्पित होना और काम न करना आवश्यक था। प्रत्येक सातवें दिन को अलग करना लोगों को अपनी सामान्य गतिविधियों को बन्द करके उसे याद कराने के लिए था, जिसने उन्हें सृजा था। सब्त का दिन इस्राएल को आराधना, विश्राम और परमेश्वर के स्मरण के लिए दिया गया।

''अपने पिता और अपनी माता का आदर'' करने की आज्ञा (20:12) में इसके साथ एक प्रतिज्ञा जुड़ी है: ''... जिससे जो देश तेरा परमेश्वर यहोवा तुझे देता है उसमें तू बहुत दिन तक रह पाए।'' (बाद में पौलुस ने इस आज्ञा को ''प्रतिज्ञा के साथ आज्ञा'' बताया; इफिसियों 6:1, 2.) कइयों ने इस प्रतिज्ञा को इस आज्ञा को मानने वाले व्यक्ति के लिए लम्बी उम्र के सम्बन्ध में समझा है। अधिक सम्भावना यही है कि यह प्रतिज्ञा इस बात को याद दिलाने के लिए है कि मूल सम्मान के अभाव में कोई जाति जीवित नहीं रह सकती। माता-पिता के प्रति असम्मान पूर्ण स्वार्थ का संकेत है, जो समाज में उथल-पुथल लाता और अन्त में राष्ट्र के पतन का कारण बनता है।

निर्गमन 20:13 में हत्या की मनाही से इस बात पर काफ़ी चर्चा हुई है कि परमेश्वर ने युद्ध और मृत्यु दण्ड को मिटाना चाहा या नहीं। ''हत्या'' के लिए इब्रानी शब्द का अर्थ ''कत्ल'' है सो यह अपने आप युद्ध और न्यायिक मृत्युदण्ड को खारिज नहीं करता। शेष पुराना नियम संकेत देता है कि इस्राएली लोग (परमेश्वर की आज्ञा से) यह दोनों काम करते थे।

आयतें 14 से 16 अपनी व्याख्या आप करती हैं, पर इस्राएलियों के लिए एक सभ्यता को बनाए रखने की इस्राएलियों की योग्यता के लिए उनके महत्व की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। फिर, आज्ञाएं मूल में नैतिकता और नीति सम्बन्धी सबसे बुनियादी पहलुओं की बात करती है। व्यभिचार, चोरी करना और एक-दूसरे के साथ या एक-दूसरे के बारे में झूठ बोलना समाज में जीवन को असम्भव बना देते हैं। जितना हम इन बातों को अपने समाज में पाते हैं, उतना ही यह और स्पष्ट होता है। जहां इन बुनियादी नियमों को नहीं माना जाता वहां समाज में गड़बड़ हो जाती है।

दसवीं आज्ञा (20:17) लोभ या किसी की चीज़ की, जो हमारी नहीं है, इच्छा करने से मना करती है। लोभ मन का बुनियादी व्यवहार है, जो व्यभिचार, चोरी, झूठी गवाही और यहां तक की हत्या तक करवा सकता है। किसी ने सुझाव दिया है कि ये आज्ञाएं गम्भीरता के ''घटते क्रम'' में हैं पर लोभ के परिणाम इस व्याख्या के विरोध में हैं। जैसा कि कइयों ने देखा है, केवल प्रकट कार्य की अपेक्षा मन के व्यवहार से निपटने वाली एक मात्र आज्ञा अन्तिम आज्ञा ही है। यह बात ध्यान देने के योग्य है, विशेषकर इस तथ्य के प्रकाश में कि नये नियम में पौलुस ने लोभ और लालच को मूर्तिपूजा से मिलाया (इफिसियों 5:5; कुलुस्सियों 3:5)। हमें याद रखना होगा कि मन का व्यवहार कार्य करवाता है और बेकाबू लोभ के परिणाम अति गम्भीर हो सकते हैं।

परमेश्वर के इन ''दस वचनों'' की समीक्षा करते हुए यह याद रखना आवश्यक है कि वे मूसा के द्वारा दी गई व्यवस्था के ''मुख्य भाग'' ही हैं न कि पूरी व्यवस्था है। निर्गमन 21-23 और लैव्यव्यवस्था की पूरी पुस्तक में कई और स्पष्ट नियम हैं, जो इन दस आज्ञाओं में ही से निकले हैं।

हमें व्यवस्था की शर्तों को कभी अधिक ही सरल नहीं बनाना चाहिए। हम यह नहीं कह सकते, ''मैं परमेश्वर के साथ सही हूं क्योंकि मैं दस आज्ञाओं के अनुसार चलता हूं।'' आज्ञाओं के अनुसार चलना एक अच्छी शुरुआत है पर परमेश्वर के साथ सही होना उससे कहीं बड़ी बात है।

आज दस आज्ञाओं की प्रासंगिकता

दस आज्ञाएं लोगों की एक विशेष जाति को बहुत पहले दी गईं थीं। हमारी अपनी संस्कृति और ऐतिहासिक माहौल उनसे बहुत अलग है, इस कारण आज उन आज्ञाओं की हमारे लिए क्या प्रसंगिकता है?

पहले तो वे हमें याद दिलाती हैं कि नैतिक पूर्णताएं हैं जिनकी मान्यता अनन्तकालिक है। हमारे समय का विषय नैतिक सापेक्षवाद की बात है। आसान शब्दों में कहें तो इसका अर्थ है कि किसी भी बात को अपने आप में पूर्णतया सही या पूर्णतया गलत नहीं माना जाता। हर बात को ''सापेक्षित'' माना जाता है। सही या गलत होना व्यक्ति की परिस्थितियों के आधार पर माना जाता है। इस प्रकार की सोच एक के लिए सही हो सकती है जबकि दूसरे के लिए गलत, यानी वह पूर्णतया सही नहीं है।

आज्ञाएं इसके विपरीत हैं। वे फिर से इस विचार का दावा करती हैं कि कुछ बातें हमेशा सही होती हैं और कुछ बातें हमेशा गलत होती हैं, चाहे व्यक्ति की परिस्थिति कोई कुछ भी हो। वे परमेश्वर के नैतिक नियम की पूर्णता के सुस्पष्ट कथन हैं।

दस आज्ञाओं का यही गुण उन्हें इतना विवादास्पद बना देता है और अधिकतर लोगों के इन्हें लोगों के विवेक से निकालने की इच्छा करने का कारण बनता है। वे उन लोगों की जो न तो मसीही और न यहूदी है, वह धार्मिक संवेदना को इतनी ठोकर नहीं मारनी, बल्कि वे इस अवधारणा के लिए ठोकर हैं कि कुछ भी पूर्णतया सही या गलत नहीं है। वास्तव में दस आज्ञाएं आमतौर पर उन लोगों की ओर से, जो उन्हें पूरी तरह से मन से निकालना चाहते हैं परमेश्वर की निन्दा के आक्रमण होते रहते हैं। निम्न कथनों जैसी बातें नई नहीं हैं:

> ... ये विश्वास वास्तविकता से मेल नहीं खाते। पहली चार आज्ञाएं ... आराधना के विशेष व्यवहारों की मांग करती हैं जो विश्वास की कई परम्पराओं वाले लोगों को अस्वीकार्य हैं।
>
> पहली आज्ञा यहोवा को छोड़ किसी भी ईश्वर की पूजा करने की मनाही करती है; यह बुद्ध मत (कुछ परम्पराओं) हिन्दू मत, सिख मत, वीका आदि जैसे कुछ धर्मों को गलत ठहराती हैं। यह अमेरिकी संविधान के प्रथम संशोधन से सीधा टकराव लेती है जिसमें धार्मिक विश्वास की स्वतन्त्रता की गारन्टी है। यह अन्य विश्वासों के प्रति असहनशील है और अल्पमत वाले धर्मों के प्रति घृणा और हिंसा को बढ़ावा दे सकती है।
>
> मूल दस आज्ञाओं में से चार सदियों पुराने एक छोटे इब्रानी कबीले के एक स्थानीय कबिलाई ईश्वर, **एल** के अहम को अघात पहुंचाने को छोड़ और कुछ नहीं करतीं। अन्य आज्ञाएं या तो बहुत कमज़ोर, बहुत मज़बूत, या बहुत अस्पष्ट हैं।[1]

अन्तिम कथन की लेखिका ''मानवीय आचरण के लिए इस आरम्भिक गाइड को अपडेट''

करने के लिए अपनी ही ''दस विवेकपूर्ण अज्ञाएं'' जोड़ने तक पहुंच गईं। उसकी एक आज्ञा है ''विश्वासों को व्यक्तिगत रखना, दूसरों को बदलने की या किसी पर, चाहे वे तुम्हारे अपने बच्चे हों अपने विश्वास को थोपने की इच्छा करना।''

एक समूह अपने ही ''दस आज्ञाओं के वैकल्पिक सैट'' देता है जिसे वे परमेश्वर की दस आज्ञाओं के स्थान पर बताते हैं क्योंकि ''वे विभिन्न विश्वास वाले समूहों के लोगों को अधिक स्वीकार्य होनी चाहिए।'' उनकी प्रस्तावित सूचियों में से एक परमेश्वर की या किसी अन्य ईश्वरीय की बात नहीं करता! आज्ञाओं का एक दूसरा प्रस्तावित सेट इस प्रकार आरम्भ होता है, ''अपने विश्वास की परम्परा में, किसी भी ईश्वर का सम्मान और पूजा करो, यदि तुम उसे मानते हो।''

ऐसे प्रस्तावों का आम लक्ष्य स्पष्ट होता है: सही और गलत या सच्चाई और झूठ के किसी भी पूर्ण मानक को मिटा देना और लोगों को अपने बच्चों को भी अपने विश्वास को बताने से मना करना! बेशक कल्पना ही की जा सकती है कि इन दस्तातेज़ों के लेखक इसमें शामिल नहीं हैं, जिन्हें यह ज़ोर देने की छूट है कि केवल उन्हीं की बात ''विवेकपूर्ण'' है।

दस आज्ञाएं इन पापों की मनाही करती हैं क्योंकि यह मनुष्य जाति के साथ रहने वाली समस्याएं हैं। इस कारण अधिकतर आज्ञाओं को यह संकेत देते हुए कि आज भी वही नियम लागू हैं, यीशु और उसके प्रेरितों द्वारा नये नियम में दोहराई गई थीं।

दूसरा, हमें याद रखना चाहिए कि दस आज्ञाएं हमारे उद्धार के उद्देश्य से नहीं, बल्कि हमें उद्धार कर्त्ता तक ले जाने के लिए थीं। कोई भी निष्कपट व्यक्ति देख सकता है कि दस आज्ञाएं यह नहीं दिखाती कि हम कितने सही हैं, बल्कि यह दिखाती हैं कि हम परमेश्वर की महिमा से कितना गिर गए हैं। यह समझ आने पर हमें एक उद्धारकर्त्ता के लिए अपनी आवश्यकता को समझने में दिक्कत नहीं होनी चाहिए। नये नियम के लेखकों की बिल्कुल यही समझ है।

> पर विश्वास के आने से पहिले व्यवस्था की आधीनता में हमारी रखवाली होती थी, और उस विश्वास के आने तक जो प्रगट होने वाला था, हम उसी के बन्धन में रहे। इसलिए व्यवस्था मसीह तक पहुंचाने को हमारा शिक्षक हुई, कि हम विश्वास से धर्मी ठहरें। परन्तु जब विश्वास आ चुका, तो हम अब शिक्षक के आधीन न रहे। क्योंकि तुम सब उस विश्वास करने के द्वारा जो मसीह यीशु पर है, परमेश्वर की सन्तान हो। और तुम में से जितनों ने मसीह में बपतिस्मा लिया है उन्होंने मसीह को पहिन लिया है। अब न कोई यहूदी रहा और न यूनानी; न कोई दास, न स्वतन्त्र; न कोई नर, न नारी; क्योंकि तुम सब मसीह यीशु में एक हो (गलातियों 3:23-28)।
>
> हम जानते हैं, कि व्यवस्था जो कुछ कहती है उन्हीं से कहती है, जो व्यवस्था के आधीन है: इसलिए कि हर एक मुंह बन्द किया जाए, और सारा संसार परमेश्वर के दण्ड के योग्य ठहरे। क्योंकि व्यवस्था के कामों से कोई प्राणी उसके साम्हने धर्मी नहीं ठहरेगा, इसलिए कि व्यवस्था के द्वारा पाप की पहचान होती है।
>
> पर अब बिना व्यवस्था परमेश्वर की वह धार्मिकता प्रगट हुई है, जिस की गवाही व्यवस्था और भविष्यवक्ता देते हैं। अर्थात परमेश्वर की वह धार्मिकता, जो यीशु मसीह

पर विश्वास करने से सब विश्वास करने वालों के लिए है; क्योंकि कुछ भेद नहीं। इसलिए कि सब ने पाप किया है और परमेश्वर की महिमा से रहित हैं। परन्तु उसके अनुग्रह से उस छुटकारे के द्वारा जो मसीह यीशु में है, सेंत मेंत धर्मी ठहराए जाते हैं। उसे परमेश्वर ने उसके लोहू के कारण एक ऐसा प्रायश्चित ठहराया, जो विश्वास करने से कार्यकारी होता है, कि जो पाप पहिले किए गए, और जिन की परमेश्वर ने अपनी सहनशीलता से आनाकानी की; उन के विषय में वह अपनी धार्मिकता प्रगट करे (रोमियों 3:19-25)।

क्योंकि जो कोई सारी व्यवस्था का पालन करता है परन्तु एक ही बात में चूक जाए तो वह सब बातों में दोषी ठहरा। इसलिए कि जिसने यह कहा, कि तू व्यभिचार न करना उसी ने यह भी कहा, कि तू हत्या न करना इसलिए यदि तू ने व्यभिचार तो नहीं किया, पर हत्या की तौभी तू व्यवस्था का उल्लंघन करने वाला ठहरा (याकूब 2:10, 11)।

व्यवस्था, जैसा कि दस आज्ञाओं में समझाया गया है, हमें यह दिखाने के लिए कि पाप क्या है एक आवश्यक कदम था; पर केवल यही हमें बचा नहीं सकती। दस आज्ञाओं को मानने के द्वारा हमें बचाने की कोशिश बेकार है। रोग निदान उपचार नहीं कहलाता। व्यवस्था से रोग का पता चलता है कि यह पाप है। सुसमाचार से उपचार यानी यीशु मसीह मिलता है। दस आज्ञाएं सुनना हमें उद्धार के लिए जिसे व्यवस्था को मानने के द्वारा अपने आप नहीं पाया जा सकता, मसीह के क्रूस की ओर भागने को विवश करने वाला होना चाहिए ।

इस्राएलियों को व्यवस्था देने के लिए सीनै पर्वत के नीचे इकट्ठा करने के बाद परमेश्वर ने मूसा को अपनी वाचा की आरम्भिक शर्तें बताईं, जिसने उन्हें आगे लोगों को बता दिया। ये शर्तें निर्गमन 19:5, 6क में संक्षिप्त की गई हैं: ''इसलिए अब यदि तुम निश्चय मेरी मानोगे, और मेरी वाचा का पालन करोगे, तो सब लोगों में से तुम ही मेरा निज धन ठहरोगे; समस्त पृथ्वी तो मेरी है। और तुम मेरी दृष्टि में याजकों का राज्य और पवित्र जाति ठहरोगे।'' जब इस्राएलियों ने ये बातें सुनीं तो उन्होंने एक आवाज़ में जवाब दिया, ''जो कुछ यहोवा ने कहा है वह सब हम नित करेंगे'' (निर्गमन 19:8क)। अधीनता और आज्ञापालन का व्यवहार ही है जिसके द्वारा हम परमेश्वर के साथ वाचा के सम्बन्ध में प्रवेश कर सकते हैं। ''करना'' और ''न करना'' की अर्थहीन सूची के बजाय दस आज्ञाओं में इस्राएल को प्रेम और वफ़ादारी की वाचा के सम्बन्ध में बुलाया गया। मसीह के द्वारा हमें आज वाचा के सम्बन्ध के लिए बुलाया जाता है, चाहे हमारी पृष्ठभूमि कुछ भी क्यों न हों यानी हम किसी भी देश या जाति से क्यों न हों और हमारे पाप कितने भी क्यों न हों। प्रभु ने बात की है। क्या हम उसकी मानेंगे ?

टिप्पणी

[1]ये सभी कथन एक वैबसाइट पर मिले थे जिनके लेखकों ने स्वयं को ''धार्मिक उदारवादी'' बताया था (www.sea1fd.hotmail.msn.com; इन्टरनैट; मई 2009 को देखा गया)। इस साइट पर यह जानकारी नहीं है पर ऐसे ही कथन और इससे मिलते जुलते कई http://www.religioustolerance.org/chr_10cn.htm; पर देखे जा सकते हैं; इन्टरनैट; 3 फरवरी 2010 को देखा गया।

सब्त (Sabbath)

जैसा कि निर्गमन 20:9, 10 स्पष्ट करता है, सब्त (*shabbath,* ''बन्द करना'') का दिन सप्ताह का सातवां दिन, सृष्टि के सातवें दिन से मिलता था, जिसमें, परमेश्वर ने ''विश्राम किया'' (उत्पत्ति 2:2, 3)। इस शब्द का अर्थ यह नहीं है कि परमेश्वर थक गया, बल्कि केवल इतना है कि उसने अपनी सृजनात्मक गतिविधि को बन्द कर दिया। याद दिलाने के लिए कि परमेश्वर हर चीज़ को बनाने वाला और सम्भालने वाला है, इस्राएलियों को कोई काम न करके प्रत्येक सप्ताह सातवां दिन मनाना आवश्यक था। व्यवस्थाविवरण 5:15 एक यादगार के लिए कि इस्राएलियों को जो किसी समय मिस्र में दास थे, यानी ऐसे लोग जिन्हें विश्राम की बड़ी आवश्यकता थी, सब्त का एक और कारण जोड़ देता है।

''सब्त को स्मरण रखना'' और ''इसे पवित्र मानना'' का अर्थ इसे अन्य सभी दिनों से अलग करने के सम्बन्ध में था, जिसे विशेष रूप से परमेश्वर को अर्पित किया गया था। इस आज्ञा का उल्लंघन उस वाचा से जो परमेश्वर ने इस्राएल के साथ बांधी थी, गम्भीर रूप से भटकना माना गया था (निर्गमन 31:12-17)।

यीशु के समय तक, सब्त के इर्द गिर्द इसकी पवित्रता को सुरक्षित करने के लिए कई शर्तें बना दी गईं थीं और यह एक प्रकार का अन्धविश्वास बन गया था। विशेषकर ''उस में न तो किसी भांति का काम का लालच करना'' कहने के परमेश्वर के ''काम'' का संक्षिप्त अर्थ निकालने के प्रयास था (निर्गमन 20:10)। यह कई बार यहां तक बढ़ा दिया जाता था कि सब्त के दिन बीमारों और ज़रूरतमंद लोगों की सहायता करना अवैध है। यीशु का अपने समय के धार्मिक अगुवों से बार-बार पंगा होता था। इसलिए नहीं कि वह निर्गमन में दी गई सब्त की आज्ञा को तोड़ता था बल्कि इसलिए क्योंकि वह इसे मानने के लिए जोड़े गए नियमों, विशेषकर फरीसियों के नियमों को तोड़ता था (उदाहरण के लिए देखें मरकुस 3:1-6; लूका 13:10-17; यूहन्ना 5:1-16; 9:1-41)। सब्त के विषय में उनके विचारों का उल्लंघन करने के लिए उसकी और उसके चेलों की लगातार आलोचना के कारण यीशु को इसके विषय में दो बड़ी सच्चाइयां बतानी पड़ीं: ''सब्त का दिन मनुष्य के लिए बनाया गया है, न कि मनुष्य सब्त के दिन के लिए,'' और ''... मनुष्य का पुत्र सब्त के दिन का भी स्वामी है'' (मरकुस 2:23-28)।

दस आज्ञाओं में से केवल सब्त की आज्ञा ही (आज्ञा के रूप में) नये नियम में नहीं दोहराई गई। इसके विपरीत आरम्भिक मसीही लोग आराधना के अपने दिन के रूप में सप्ताह के पहले दिन (रविवार को) मनाते थे जिसे वे ''प्रभु का दिन'' कहते थे (देखें प्रेरितों 20:7; 1 कुरिन्थियों 16:1, 2; प्रकाशितवाक्य 1:10)। इस दिन का चयन स्पष्टतया इसलिए किया गया क्योंकि यह मुर्दों में से प्रभु के जी उठने का दिन था; इसके अलावा आराधना के दिनों में बदलाव से आरम्भिक विश्वासियों को यहूदी मत से अपनी अलग पहचान बनाने में सहायता मिली।

आधुनिक परम्पराओं के विपरीत, प्रभु का दिन (रविवार) को पवित्र शास्त्र में कहीं भी ''सब्त'' नहीं बताया गया। ''मसीही सब्त'' का विचार मसीहियत के इतिहास में बाद में आया जब मसीही लोगों के रविवार के दिन को मनाने पर सब्त की पाबन्दियां लगाने (मुख्यतया, काम न करने) की इच्छा की गई। यह दो अलग-अलग वाचाओं के दो अलग-अलग संस्थानों में उलझन पैदा करता है। फिर भी दोनों को मनाए जाने में परमेश्वर को प्रमुख है।